द्वितीय अध्याय

- परिवार से तात्पर्य -

अध्याय द्वितीय

परिवार से तात्पर्य

परिवार : स्वरुप, व्युत्पत्यर्थ, परिभाषा और महत्व --

परिवार का स्वरुप --

अनेक प्रेरकों, आवश्यकताओं, क्रियाओं के फलस्वरुप मानवी प्रजाति ने अत्यंत सुन्दर सामाजिक विश्वासों, रीतिरिवाजों, विचारों और संस्थाओं का निर्माण किया है। इन सबका पोषण, समाज द्वारा होता है जो उन्हें एक पीढी से दूसरी पीढी को हस्तातंरित करने के लिए इच्छुक होता है। प्रत्येक समाज में अनेक प्रकार के समूह होते है, और ऐसे छोटे-मोठे समूह सदस्यों के वय, लिंग, धर्म, वसतिस्थान, व्यवसाय इत्यादि पर आधारित होते है वैसे ही समूह में सदस्यों के आप्तसंबंधों के बंधन पर आधारित सामाजिक समूहों को `परिवार` कहते है। ऐसी संस्थाओं में संभवत: सबसे पुरानी संस्था `परिवार` है। परिवार एक सार्वभौमिक संस्था है। मानव समाज का इतिहास परिवार का ही इतिहास है। मानव जीवन के प्रारम्भ से ही परिवार उसके साथ है और किसी न किसी रुप में यह सांस्कृतिक विकास के सभी स्तरों पर पाया जाता है। परिवार ही समाज की प्रारम्भिक इकाई है।

परिवार के बिना समाज को निरन्तरता संभव नहीं है, क्योंकि परिवार ही नये बच्चों को उत्पन्न करता है, जो मृत लोगों का रिक्त स्थान भर देता है। इस प्रकार परिवार द्वारा मृत्यु और अमरत्व, दो विरोधी अवस्थाओं का सुन्दर समन्वय हुआ है। इसलिए परिवार समाज की महत्वपूर्ण संस्था है। परिवार में ही मानव के

आत्म-संरक्षण, वंश - वर्धन और आर्थिक विकास होता है। परिवार के बिना मनुष्य मनुष्य ही नहीं है, तो मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से मानव के शरीर एवं मन का वह अविभाज्य हिस्सा है। मानव में पारिवारिक वृत्ति जन्मजात होती है। लेकिन परिवर्तित परिस्थितियों में देश एवं कालानुसार परिवार का विभिन्न रुप दिखाई देता है। भारतीय संस्कृति में परिवार के इसी विशद दृष्टिकोण को लक्षित करते हुए कहा है ` वसुधैवकुटुम्बकम् ` की भावना को प्रश्रय दिया है पारिवारिक भावना का साहित्य संसार से घनिष्ठ सम्बन्ध है साथ ही उसे विश्व में भी अत्यधिक महत्व का स्थान दिया गया है, ` परिवार विश्व की परम्परागत सार्वकालिक, सर्वजनिन, आधारभूत, बहुउद्देश्यपूर्ण, सामाजिक संस्था है, जो हर भूभाग में प्रचलित है। परिवार का व्यक्ति के व्यक्तित्व से अनिवार्य सम्बन्ध है। परिवार में ही व्यक्ति के सामाजिक सम्बन्धों का विकास होता है, अत: यह कहने में कोई अत्युक्ति न होगी कि परिवार व्यक्ति को सामाजिक जीवन के लिए तैयार करता है। ` [१]

दूसरे शब्दों में परिवार ही व्यक्ति का पारिवारिकरण करता है और संभवत: यही प्रमुख कारण है कि परिवार आज एक सामान्य सामाजिक इकाई है और किसी न किसी रुप में यह सांस्कृतिक विकास के सभी स्तरोंपर पाई जाती है। समय समय पर पारिवारिक समूह बदलता है और विभिन्न समाजों में विभिन्न कालों और स्थानों पर इसके विभिन्न रुप देखे गये हैं। ` [२] प्राचीन काल से आज तक प्रत्येक समाज में परिवार का अस्तित्व रहा है और अभी तक अस्तित्व कम नहीं हुआ है क्योंकि परिवार ही ` समाजरचने की बुनियाद है ` इसका कारण यह है कि ` व्यक्ति का जन्म, बचपन, व्यक्तिमत्व का विकास ऐसी अनेक इच्छाओं की पूर्ति परिवार से ही होती है। परिवार व्यक्ति की मूलभूत इकाई है। व्यक्तियों के समूह से ही

१ डॉ. रक्षापुरी ` प्रेमचन्द ` साहित्य में व्यक्ति और समाज, पृ.सं.१४ से उद्धृत - प्रेमचंद परंपरा की कहानियों में पारिवारिक एवं सामाजिक चित्रण डॉ. राजेन्द्रकुमार शर्मा - प्रगतिप्रकाशन, प्र.सं.१९८४।

२ डी.एन.मजूमदार - भारतीय संस्कृति के उपादान ` पृ.सं.४८ - उद्धृत - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि - डॉ. स्वर्णलता - विवेक पब्लिशिंग हाऊस, जयपूर प्रथम संस्करण -१९७५।

परिवार बनता है। प्रत्येक मानव परिवार में ही जन्म लेता है। परिवार व्यक्ति को विस्तृत सामाजिक जीवन के लिए तैयार करता है। आगेचलकर राष्ट्र के उत्थान और पतन में परिवार एवं समाज की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उसके स्वरुप के अनुसार राष्ट्र की `इमेज` निर्मित होती है। सही अर्थों में परिवार एवं समाज ही राष्ट्र की रीढ़ है। जिस प्रकार मानव की समस्त सामाजिक संरचना रीढपर ही अवस्थित होती है, उसी प्रकार राष्ट्र की भव्यतम् इमारत भी परिवार एवं समाज की सुदृढ जीवन पर आधारित होती है और इसेही `राष्ट्र` कहलाया जाता है। इसका मतलब यह है कि परिवार ,समाज,राष्ट्र परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं। इतना परिवार का महत्व व्यापक है। इसलिए पारिवारिक भावना का साहित्य संसार से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

परिवार व्यक्ति को विविध सुविधायें प्रदान करता है, वह उसपर अनेक सामाजिक निर्बन्ध भी लगा देता है। यह बन्धन समाज को व्यवस्था प्रदान करते हैं और व्यक्तित्व के विकास में इस समाज व्यवस्था का महत्वपूर्ण योगदान भी स्वीकार करते हैं। यह साहित्य मूलत: पारिवारिक समस्याओं से ही उत्पन्न हुआ है। पूरे विश्व में `परिवार` संस्था दिखाई देती है।इन परिवारों से सम्बन्धित पाश्चात्य और भारतीय रुपों को देखना जरुरी है।

परिवार का भारतीय रुप --

परिवार संस्था समाज की एक महत्वपूर्ण संस्था के रुप में स्वीकृत हो गयी है। सामाजिक संगठन का मूल आधार परिवार रहा है। जीवन में कुछ कार्य ऐसे होते है ,जिन्हें दूसरों के सहयोग के बिना पूर्ण करना कठिन ही नहीं असंम्भव होता है। जैसे कामवासना की पूर्ति कर संतुष्टि पाता है, तो एक नई समस्या उसके सामने उत्पन्न होती है। वह समस्या है `सन्तानोत्पत्ति` की समस्या`। सन्तान का किस प्रकार पालन-पोषण हो, किस प्रकार उसकी सुरक्षा हो इन सभी प्रारम्भिक किन्तु महत्वपूर्ण सहज स्वाभाविक समस्याओं के लिए ही परिवार का जन्म हुआ है।`[3] और तदनंतर यह पारिवारिक प्रक्रिया भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग बन गई है, क्योंकि

३ डॉ.कैलाशचन्द जैन - प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाएँ -- पृ.१०६ (स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठ-भूमि - डॉ.स्वर्णलता पब्लिशिंग जयपूर,प्रथम संस्करण १९७५।

भारतीय संस्कृति देशाकाल की सीमा में बंधी हुई एक विशेष संस्कृति है,जिसका उद्भव और विकास मानव संस्कृति की पृष्ठभूमि में हुआ है।"[४]

परिवार के प्रति भारतीय दृष्टिकोण अत्यंत ही गंभीर है। परिवार नामक संस्था का उद्गम ही मानवीय मौलिक मांग सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं का प्रतिफलन है। पुरुष को रति-सुख हेतु,स्त्री की आवश्यकता,तदनंतर विवाह का अटूटबन्धन और संतान की एषणा आदि परिवार के जन्मदाता है। आगे चलकर परिवार पारिवारिक ,सामाजिक,धार्मिक कार्यों के सम्पन्न होने में लाभकारी सिध्द होने लगा और शनैः शनैः परिवार के कार्यक्षेत्र में समस्त मानवीय क्रियाकलाप सिमटने लगे। परिवार भारतीय समाज का प्राण है। प्रख्यात समाजशास्त्री डॉ.कैलाशचन्द्र जैन के कथनानुसार --" परिवार का सामाजिक-संगठनों में एक विशिष्ट स्थान है।" व्यक्ति का समाज के विकास और उत्थान में बड़ा योगदान रहा है। जन्म के समय मनुष्य सामाजिक प्राणी के रुप में नहीं रहता उसको सुसंस्कृत बनाने में परिवार सबसे पहली तथा महत्वपूर्ण संस्था है। पति-पत्नी,माता,पुत्र, पिता,पुत्री और भाई-बहन इसके सदस्य होते है, जिनमें एक सांस्कृतिक भावना पायी जाती है।"[५]

प्रसिध्द समाजशास्त्री रवीन्द्रनाथ मुकर्जी परिवार की प्राचीनता के बारे में विचार करते हुए कहते है कि " ऋग्वैदिक काल से ही सामाजिक जीवन की एक आधारभूत इकाई के रुप में परिवार के महत्व को भारतवासियों ने स्वीकार किया है। पति-पत्नी के अतिरिक्त परिवार में माता-पिता,भ्राता-भगिनी पुत्र-पुत्री,बहु व अन्य रिश्तेदार भी रहते है।[६] भारतीय चिन्तक हरिदत्त वेदालंकार ने अपने प्रसिध्द

४ डी.एन.मजूमदार - भारतीय संस्कृति के उपादान - पृ.सं.५१,स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि - डॉ.स्वर्णलता, विवेक पब्लिशिंग जयपूर,प्रथम संस्करण,१९७५।

५ डॉ.कैलाशचन्द्र जैन - प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाएँ -- पृ.सं.१०६,प्र.सं.१९७५।

६ रवीन्द्रनाथ मुकर्जी, भारतीय सामाजिक संस्थायें सरस्वती सदन,मसूरी, १९६७, पृ.सं.१०।

ग्रंथ ` हिन्दू परिवार मीमांसा ` में ` परिवार ` नामक संस्था के संदर्भ में, भारतीय रुपों का प्रतिनिधित्व सा करते हुए लिखा है -- ` परिवार मानव जाति में आत्म-संरक्षण, वंश-वर्धन और जातीय जीवन के सातत्य को बनाये रखने का प्रधान साधन है। मनुष्य मरण धर्मी है, किन्तु मानव-जाति अमर है। व्यक्ति उत्पन्न होते है, बचपन, यौवन और बुढापे की अवस्था भोगकर समाप्त हो जाते है, किन्तु वंश-परम्पराद्वारा उनका संतानक्रम अविच्छन्न रुपसे चलता रहता है। मृत्यु और अमरत्व दो विरोधी वस्तुएँ है, किन्तु परिवार - द्वारा इन दोनों का समन्वय हुआ है। व्यक्ति भले ही मर जायें, पर परिवार और विवाह द्वारा मानव जाति अमर हो गयी है। `[७]

परिवार समाज की महत्वपूर्ण संस्था है, भारतीय समाज में परिवार एक समूह के रुप में कार्य करता है। जो एक ही घर में रहता है। परिवार में रहकर ही व्यक्ति सामाजिक अनुकूलन की शिक्षा प्राप्त करता है। परिवार के सदस्य पारिवारिक - भावना के स्तर पर एक दूसरे से सम्बन्धीत होते है और उनकी रुचियाँ, विचार व्यवहार आदि में समानता पाई जाती है। प्रसिध्द समाजशास्त्रज्ञ डी. एन. मजूमदार ने भारतीय रुपों के परिप्रेक्ष्य में परिवार की बहुत ही सुन्दर व्याख्या दी है। कुंवरसिंह तिलरन के कथनानुसार वात्सल्य, प्रेम तथा स्नेह ऐसे मानसिक उद्वेग, है, जिनसे परिवार का सम्बन्ध होता है। पति-पत्नी का स्वाभाविक प्रेम, बच्चों के प्रति वात्सल्य-भावना स्वाभाविक है। परिवार एक ऐसा संगठन है जो पूर्ण रुपेन भावनाओंपर आधारित है। अतएव उसके सदस्य एक दूसरे के प्रति आत्मत्याग की भावना से प्रेरित रहते है। माता-पिता अपने बच्चों के भविष्य के लिए दु:खों को त्यागने में संकोच नहींकरते। परिवार ही मनुष्य के मूल-व्यक्तित्व, चरित्र, संस्कार आदि का निर्णायक है। सामाजिक रीति-रिवाज-प्रथाएँ, परम्पराएँ, सिखाने तथा शिक्षा देने में परिवार का महत्वपूर्ण स्थान है। अत: व्यक्ति के समाजीकरण की प्राथमिक पाठशाला परिवार ही है। पारिवारिक सम्बन्धों की अवहेलना कोई

---

७ हरिदत्त वेदालंकार - ` हिन्दू परिवार मीमांसा सरस्वती सदन, मसूरी, १९६३, पृ. ४७।

भी मनुष्य नहीं कर सकता क्योंकि परिवार से ही उसे सबकुछ प्राप्त होता है। माता - पिता, भाई-बहन ये एक ही परिवार के विभिन्न शारीरिक अवयव है उनके प्रति आम व्यक्ति को उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। --' समाजशास्त्रीय के द्वारा परिवार का वर्गीकरण विभिन्न प्रकार से किया गया है यथा पितृमूलक - मातृमूलक परिवार, एक विवाह-बहुविवाह बहु-पति परिवार न्यूस्टिक संयुक्त परिवार। भारतीय समाज में प्रारंभ से ही पितृमूलक संयुक्त परिवार प्रणाली की परम्परा का प्रचलन रहा है।

' पूर्व वैदिक युग में पितृ-प्रधान संयुक्त परिवार प्रणाली थी। इस परिवार के सदस्य पुत्र, पौत्रादि और पितृ-बंधु पिता के संरक्षण में रहते थे।' [९] प्रख्यात समाजशास्त्री कुंवरसिंह तिलारन के अनुसार' परिवार को मोटे तौर पर दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। एक विस्तृत परिवार माता-पिता, पुत्र-बहु और बच्चों तक सीमित है। दो-संयुक्त परिवार में पति-पत्नी, भाई-भाई की पत्नी, उनके बच्चों को भी शामिल किया जाता है।' [१०]

सार रुप में भारतीय समाज में' संयुक्त परिवार प्रणाली हिन्दू समाज की एक विशेष देन है। इसमें रक्त परिवार तथा मूलभूत परिवार के अतिरिक्त अन्य सम्बन्धी भी रहते है। साधारणतया एक परिवार में तीन या चार पीढ़ियों के व्यक्ति एक साथ रहते है। परिवार के सब सदस्यों में आयु में जो सबसे बड़ा होता है वही परिवार का मुखिया या स्वामी होता है। अन्य सभी सदस्यों को उसके आदेश का पालन करना पड़ता है। परिवार का सब प्रबन्ध वही करता है। सामान्यतया उसकी पत्नी सब स्त्रियों पर अपना नियंत्रण रखती है। परिवार के जो पुरुष कार्य

---

८ डॉ. राजेन्द्र कुमार शर्मा - प्रेमचन्द - परम्परा की कहानियों में पारिवारिक एवं सामाजिक चित्रण, प्रगति प्रकाशन, आगरा -३, पृ.६२।

९ कैलाशचन्द्र चन्द्र - प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाएँ - पृ.सं.१०७।

१० कुँवरसिंह तिलारन - सामाजिक तथा सांस्कृतिक मानवशास्त्र- पृ.७९, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ - ७ - सं.१९९२।

करने योग्य होते है, वे धनोपार्जन करते है और जो कुछ धन वे लाते है,उसे परिवार के मुखिया को देते है। उसके बाद परिवार के मुखिया का यह कर्तव्य होता है कि वहउन व्यक्तियों को उनके व्यय करने के लिए कुछ धन दे दे। इस प्रकार गृह-स्वामी और गृह-स्वामिनी को अधिकार प्राप्त होते है। अन्य पुरुषों और स्त्रियों के केवल कर्तव्य है, अधिकार नहीं।'

आधुनिक युग में संयुक्त परिवार विघटित होते जा रहे है उनके कारण इस प्रकार है -- औद्योगिकरण,यातायात के साधनों में उन्नति,जनसंख्याका अधिकया,इसके अतिरिक्त सास,बहू,देवरानी, जेठानी के बीच होनेवाले कलह है। वैसे ही नागरीकरण,मकानों की समस्या,निर्धनता, पाश्चात्य संस्कृति और शिक्षा, व्यक्तिवाद,महिला जागृति और आन्दोलन कलह विवाह,झगडे,नारी-शिक्षा, कानून एवं नौकरी,व्यापार आदि से सम्बन्धित अन्य कारण व्यक्ति को अपने बच्चों के सुख,शान्ति की ओर संयुक्त परिवार में ध्यान नहीं जाता। इन सब कारणों से संयुक्त परिवार टूट रहे है।

परिवार का पाश्चात्य रुप --

भारतीय परिवार जहाँ धर्म,अध्यात्म और आत्मिक सुख सन्तोष पर आधारित है, वहाँ पाश्चात्य परिवार भौतिक सुखों,व्यक्तिवाद को ही अधिक महत्व देता है, जिसे पाश्चात्य संस्कृति शिक्षा परिस्थितियों वातावरण, सम्बन्ध आदि के अनुकूल ही कहा जाये तो अत्युक्ति नहीं है। पाश्चात्य परिवार में यौन सम्बन्धों, सीमित सदस्यों, बच्चे सहित आदि तथ्यों को ही महत्व दिया जाता है। याने परिवार ,विश्व की सर्वदेशीय,सर्वकालिक,सर्वजनिन संस्था होते हुए भी पाश्चात्य रुपों के सन्दर्भ में भारतीय रुपों से कुछ भिन्न है। पाश्चात्य रुपों में पारिवारिक सदस्यों की सीमा पर्याप्त रुप से सीमित रहती है। यह परिवार बच्चों की उत्पत्ति और उसके पालन पोषण पर बल देता है, लेकिन विवाह जैसे पवित्र-बन्धन का उसपर प्रतिबंध नहीं है। वे संयुक्त परिवार को एक जाइन्ट स्टाक कम्पनी मानते है -- 'संयुक्त परिवार जाइन्ट स्टाक कम्पनी के समान एक सहकारी संस्था है। वे लोग परिवार का तात्पर्य केवल पति-पत्नी और उनके बच्चों से लेते है। लेकिन वैसे ही

अरस्तु का कथन है कि परिवार प्रकृति द्वारा मनुष्य की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु स्थापित संघ है और परिवार के सन्दर्भ में श्री बर्गेश एवं लाक ने लिखा है --` परिवार विवाह, रक्त सम्बन्ध या गोद लेने के बन्धनों से सम्बन्ध व्यक्तियों का एक समूह है जो गृहस्थी का निर्माण करते है और एक दूसरे के साथ अन्त:क्रिया और अन्त: सन्देश देते हुए, पति-पत्नी, माता-पिता, पुत्र-पुत्री और भाई-बहन के रूप निर्धारित सामाजिक कार्यों का वहन करते है, एक सामान्य संस्कृति को बनाते है एवं उसकी रक्षा करते है। [११]

भारतीय लोगों की तथा पाश्चात्य लोगों की परिवार-परिवार सम्बन्धी भावनाएँ अलग है। भारत में परिवार मानवीय विकास का विद्यालय माना जाता है। परिवार के सदस्य एक दूसरे के प्रति श्रध्दा, सम्मान, सहयोग, सद्भावना, कर्तव्य-बोध, आत्मनियंत्रण, उत्तरदायित्व-भावना, प्रेम, स्नेह, मोह, ममता , वात्सल्य, त्याग, सहिष्णुता, उदारता मय, सुरक्षा आदि गुणों को समय, सदस्य और आवश्यकता के अनुसार वहन करनेवाली शक्ति याभावना पारिवारिक भावना के नाम से अभिहित होती है, जिसपर` परिवार` नामक चिरतंन स्थायी, भव्य इमारत की प्रतिस्थापना होती है। अंत में हमे ऐसा कहने में कोई आचकता नहीं होगी कि भारतीय संस्कृति में परिवार को जितना महत्व दिया जाता है, उतना पाश्चात्य संस्कृति में नहीं दिया जाता।

परिवार मानव समाज की अतिप्राचीन संस्था है। प्रत्येक युग में निम्नस्तर से लेकर उच्चस्तर तक के सभी प्रकार के मानव समाजों में परिवार किसी न किसी रुप में विद्यमान है। परिवार के उद्गम के विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। परिवार के उत्पत्ती के सम्बन्धी में विविध सिध्दान्त प्रचलित है।

---

११ E.W.Burgess and H.S.Locke - The family from Institution to compainonship. American Book Co., NewYork, p.8.

(१) पाश्चात्य सिध्दान्त --

परिवार के उत्पत्ती के सम्बन्ध में सर्वप्रथम प्लेटो तथा अरस्तू ने पितृसत्ता- - त्मकता के सिध्दान्त को प्रतिपादित किया है।

(२) कामचार का सिध्दान्त --

भारतीय प्राचीन आचार्यों का कहना है कि परिवार का उद्गम कामचार से हुआ है। मत्स्य न्याय के अनुसार समाज संगठन के पूर्व अराजकता की स्थिति थी, जिनमें यौन स्वतंत्रता, स्त्री-पुरुषों का स्वच्छन्द संभोग प्रचलित था। इसके अंतर्गत स्वच्छन्द विवाह और गणविवाह भी मान्य थे। कामचार के बाद नियमबध्द विवाहों का जन्म हुआ। वहाँ से परिवार का उद्गम माना जाता है।

(३) विकासवादी सिध्दान्त --

बैकोफन ने विकासवादी सिध्दान्त से स्पष्ट किया है कि परिवार एक निश्चित क्रम से विकसित हुआ है। पहले मातृसत्ता को महत्व दिया गया और बाद में पिता के महत्व जानने के बाद पितृसत्ताक पद्धतिका अवलंब किया जाने लगा।

परिवार की उत्पत्ति प्रत्येक समाज में एक ही तरह से और एक ही कारण से नहीं हुई है। मनुष्य की आवश्यकताओं ने परिवार को जन्म दिया। प्रथमत: मानव कम से कम प्रतिद्वन्द्विता रखते हुए अपनी यौन भावना को संतुष्ट करना चाहता था और इसकी पूर्ति केवल परिवार द्वारा ही हो सकती थी। दूसरा कारण सन्तानोत्पत्ति की इच्छा का रहा है। सन्तानोत्पत्ति बिना स्त्री-पुरुष के सहयोग और गठ - बन्धन के संभव नहीं थी। मानव सन्तानोत्पत्ति की इच्छा का रहा है। सन्तानो - - त्पत्ति बिना स्त्री-पुरुष के सहयोग और गठ-बन्धन के संभव नहीं थी। मानव सन्तानोत्पत्ति द्वारा अपने आपको अमर बनाना चाहता है। इस इच्छा की पूर्ति भी परिवार से ही हो सकती है। यौन तथा भूख की तृप्ति के लिए, सन्तानोत्पत्ति की स्वाभाविक प्रवृत्ति के लिए और आर्थिक सुरक्षा के लिए परिवार नामक एक संगठन की आवश्यकता प्रत्येक समाज के सदस्यों ने अनुभव की होगी जिसका स्वाभाविक

परिणाम है --` परिवार की उत्पत्ति`[१२] अन्त में सन्तान के पालन-पोषण अधिकार,कर्त्तव्य,आर्थिक व्यवस्था आदि ने मिलकर परिवार की उत्पत्ति में सहयोग प्रदान किया है।

परिवार कीउत्पत्ति मूलता से संस्कृत,हिन्दी और अंग्रेजी परिभाषा में हुई है। परिवार की उत्पत्ति क्यों हो गई ? परिवार विषायक धारणाएँ कौन--कौनसी है ? इसलिए हम सबसे पहले` संस्कृत परिभाषा` से शुरुवात करते है।

संस्कृत - व्युत्पत्यर्थ एवं परिभाषा --

१) ` परिवार` शब्द संस्कृत के परि उपसर्ग व्ह धातु में घञ्,प्रत्यय के योग से बना हुआ। संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुम में` परिव्रियते अनेन इति परिवार: ` सूत्र प्राप्त होता है। [१३]

२) ` वाचस्पत्यम कोश ` में परिवार शब्द भी मिलता है जिसकी व्याख्या इस प्रकार है ...` परित: वारयति इति परिवार :`[१४] अर्थात निकटतम संबंधियों से घिरी हुई संस्था परिवार है।

३) ` आप्टे कोश ` में भी इसे` घनिष्टतय बंधु - बांधवो का संगठन कहा गया है `[१५]

४) ` हिन्दी विश्वकोश` के अनुसार परिवार का मूलार्थ है ... परिवार ` परिव्रियतेनेन परि-वृ-करणे` घज` अर्थात एक ही कुल में उत्पन्न और परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध रखनेवाले मनुष्यों का समुदाय।`[१६]

---

१२ रवीन्द्र मुकर्जी - सामाजिक मानवशास्त्र की रुपरेखा - सरस्वती सदन, मसूरी,१९६२, पृ.सं.२७५।

१३ चतुर्वेदी ,द्वारा का प्रसाद,संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुम १९५७,।

१४ चौखंभा संस्कृत सीरीज, वाचस्पत्यम आपस्तंब धर्मसूत्र, पंचमभाग,१९३२, बनारस।

१५ आप्टे कोश -

१६ नगेंद्रनाथ वसु और विश्वनाथ वसु - हिन्दी विश्वकोश - त्रयोदश भाग - १९२७।

५) 'वैदिक इण्डेक्स' - के अनुसार वेदो में कुल तथा परिवार शब्द की विस्तृत व्याख्या की गई है। यह घर और घर से सम्बन्ध होने के रुप में अजहलपणा स्वंय परिवार का घोतक है। गोत्र से अलग कुल से परिवार का संकुचित अर्थ प्रतीत होता है। जिसमें सभी सदस्य एक ही घर में अविभक्त कुटुम्ब के रुप में रहते थे।

इससे स्पष्ट होता है कि परिवार निकटतम रक्त सम्बन्धियों का समुदाय है। गोत्र,कुल,कुटुम्ब और परिवार शब्द परस्पर भिन्नार्थी है। गोत्र शब्द का अभिप्राय स्वंय में अतिव्याप्त है और कुटुम्ब शब्द भी परिवार शब्द की अपेक्षा अधिक विस्तृत है।

हिन्दी की परिभाषाएँ --

(१) डॉ.डी.एन.मजूमदार की --' परिवार व्यक्तियों का एक समूह है जो कि एक छत के नीचे निवास करता है और एक जो मूल और रक्त सम्बन्धों से जुड़े हुए है,तथा स्थान,रुचि और कृतज्ञता की अन्योन्याश्रितता के आधार पर जाति की जागरुकता रखते है।' १७

(२) श्रीमती इरावती कर्वे -- के अनुसार ' संयुक्त परिवार उन व्यक्तियों का समूह जो साधारणतया एक मकान में रहते है। जो एक रसोई में या चूल्हे पर बना भोजन खाते है, जो संयुक्त सम्पत्ति रखते है, सामान्य सम्पत्ति के स्वामी होते है और सामान्य उपासना में भाग लेते है तथा किसी प्रकार एक दूसरे के रक्त सम्बन्धी है।' १८

(३) आई.पी.देसाई -- के अनुसार' हम उस परिवार को संयुक्त परिवार कहते है, जिसमें एकाकी-परिवार से अधिक पीढियों के सदस्य एक दूसरे सम्पत्ति आय तथा पारस्पारिक अधिकारों के द्वारा सम्बन्धित हो।' १९

१७ नागरी प्रचारणी सभा,वाराणसी हिन्दी विश्वकोश,खण्ड ७ प्रथम संस्करण-१९६६, पृ.११७।

१८ भारतीय संस्कृति के उपादान - डॉ.डी.एन.मजूमदार - पृ.५१, उद्धृत स्वातं- -त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि - डॉ.स्वर्णलता - विवेक ,पब्लिशिंग हाऊस,जयपुर,प्रथम संस्करण १९७५।

१९ डॉ.राजेन्द्र कुमार शर्मा - प्रेमचन्द परम्परा की कहानिया - में पारिवारिक एवं सामाजिक चित्रण - प्रगती प्रकाशन,आगरा,३,पृ.सं.६३।

परिवार मनुष्य को सामाजिक,आर्थिक और शारीरिक सुरक्षा तो प्रदान करता ही है, इसके अतिरिक्त यौन सम्बन्धों की भी इसमें सुव्यवस्थित और संयमित रुप में पूर्ति होती है। यद्यपि यह आवश्यकता परिवार से बाहर भी पूर्ण हो सकती है तथापि यह समाज द्वारा मान्य नहीं है। वास्तव में परिवार सुरक्षाओं का स्वर्ग है जिसमें इसका सदस्य आराम तथा बाह्य संसार की समस्याओं और प्रयोगों से सुरक्षा का आश्वासन पाता है।[२०]

उपर्युक्त परिभाषाओं में इरावती कर्वे एवं आई.पी.देसाई इन दोनों की परिभाषा यह संयुक्त परिवार सम्बन्धी है। उन्होंने एकाकी परिवार से संयुक्त परिवार को कुछ अलग माना है --

अँग्रेजी परिभाषाएँ --

अँग्रेजी में परिवार का पर्यायवाची शब्द है -- ` फैमिली ` जिसकी मूलधातु लैटिन शब्द में है। फैमिली का अर्थ है -- " Domestic Group ` इंटरनैशनल एनसाइक्लोपीडिया ऑफ दी सोशल साइन्सेस ` - के अनुसार ` परिवार ` और कुटुम्ब परम्परा भिन्न है। कुटुम्ब का तात्पर्य है ऐसे व्यक्तियों का समूह जिसमें रक्त संबंध आवश्यक न भी हो और परिवार का तात्पर्य है वह कौटुम्बिक समूह जो अभ्यासगत रुप से सहनिवास तथा सहभोजन करता हो।[२१]

रांगेय राघव परिवार और कुटुम्ब में भेद करते हुए लिखते है -- परिवार पति-पत्नी का होता है,पर हमारे यहाँ बड़ा परिवार होता है जो कुटुम्ब कहलाता है।[२२]

---

२० डॉ.आशा बागड़ी - प्रेमचन्द परवर्ती उपन्यास साहित्य में पारिवारिक जीवन - शोध प्रबन्ध प्रकाशन, दिल्ली - ७, पृ.सं.६।

२१ David H.Sills - International Encylopaedia of the social Science,Vol.S.P.304.

२२ रांगेय राघव - कब तक पुकारुँ -तृतीय सं.१९६३,पृ.सं.४८३।

पाश्चात्य प्रभाव के कारण ही आज के व्यावहारिक जीवन में पारिवारिक शब्द से केवल पति-पत्नी और उनकी सन्तान का अर्थ ग्रहण किया जाता है। जो इस शब्द का धीरे-धीरे अर्थ संकोच होता चल जा रहा है। और कभी कभी केवल पत्नी के पर्यायवाची रुप में प्रयुक्त होता है।

परिवार संबंध में अनेक देशी तथा विदेशी समाजशास्त्रीयों ने भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ प्रस्तुत की है --

(१) "Encylopaedia Britannica" -

"The family is here defined as a Social group, consisting of one or more, men living normally in the same habitation with one or more Women, and the Childern, attleast during their youth that have resulted or appear to be connected with their union."[23]

(२) मैकाइवर --

"परिवार उस समूह का नाम है जिसमें स्त्री-पुरुष का यौन सम्बन्ध पर्याप्त, निश्चित और इनका साथ इतनी देर तक रहे जिससे संतान उत्पन्न हो जाये और उसका पालन-पोषण भी किया जाये।"[२४]

(३) वील्स तथा हाइजर --

"परिवार एक सामाजिक समूह के रुप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके सदस्य रक्त संबंधो द्वारा बध्द होते है।

---

२३ Encylopaedia of Britannica, Vol:9, 1947.

२४ महेन्द्रकुमार जैन, हिन्दी उपन्यास में पारिवारिक चित्रण - जैन ब्रदर्स, नयी दिल्ली, ५, प्र.सं.१९७४, पृ.५।

(४) बर्गेस तथा लाक --

' एक परिवार समूह, पुरुष स्वामी, उसकी स्त्री तथा स्त्रियाँ और उनके बच्चों को मिलकर बनता है और कभी कभी इनमें एक या अधिक अविवाहित पुरुषों को भी सम्मिलित किया जा सकता है।' २५

(५) जुकरमैन --

' बच्चों या बिना बच्चों वाले एक पति-पत्नी के या किसी एक पुरुष या एक स्त्री के अकेले ही अपने बच्चे सहित एक थोडे बहुत स्थायी संघ को परिवार कहते है।' २६

इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषाओं में न्यूनाधिक मतभेद दिखाई देता है। डॉ. डी. एन. मजूमदार ने परिवार का वास्तविक अर्थ ग्रहण करने का प्रयत्न किया है परन्तु वे भी परिवारगत सांस्कृतिक एकता की उपेक्षा सी कर गये है। मैकाइवर ने परिवार का तात्पर्य स्त्री-पुरुष के निश्चित यौन-सम्बन्ध और अपनी सन्तानों के भरण-पोषण से ही ग्रहण किया है। बर्गेस तथा लाक उनकी परिभाषा संर्वागपूर्ण कही जा सकती है। उनका कहना परिवार के रक्त-सम्बन्ध, साहचर्य-भाव और साथ ही परिवार के सांस्कृतिक परिवेश का पूर्ण उल्लेख किया है। इस दृष्टिसे वील्स और जुकरमैन के अनुसार परिवार के एक भौतिक आवश्यकता है अथवा वह एक सामाजिक दायित्व है।

इनसाइक्लोपिडिया ब्रिटानिका में भी परिवार का अव्याप्त अर्थ ग्रहण किया है, जो केवल पाश्चात्य दृष्टिकोण का ही द्योतक है। इसलिए विभिन्न परिभाषाओं की कमतरता का इस्तेमाल कर परिवार को यों परिभाषित किया है -

---

२५ महेन्द्र कुमार जैन - हिन्दी उपन्यास में पारिवारिक चित्रण जैन ब्रदर्स, नयी दिल्ली, ५ - प्र. सं. १९७४, पृ. ६।

२६ - वही - पृ. ६।

"परिवार एकाधिक व्यक्तियों का वह समूह है जो विवाह या रक्त सम्बन्ध के कारण पारस्पारिक हितचिन्तन करते हुए साहचर्यभाव से एक ही घर में रहकर वैयक्तिक विकास करने के साथ "परिवार" के व्यक्तित्व का भी निर्माण करता है।"[२७]

हम सारांश रुप में परिवार सम्बन्धी परिभाषाओं की चर्चा की है, उससे यही दृष्टिगोचर हुआ है कि परिवार में रक्तसम्बन्धियों के साथ साथ आत्मीयता से, अपनापन से रहनेवाली सदस्य भी उस परिवार के अंग माने जा सकते है। इस प्रकार यह कहना अत्युक्ति नहीं की समाज रुपी विशाल भवन की नींव में परिवार रुपी ईंट लगी हुई है। यदि परिवार का आधार हटा लिया जाय तो समाज धराशायी हो जायेगा। ऐसा परिवार का विस्तार फैला हुआ दिखाई देता है।

परिवारों का वर्गीकरण --

परिवार एक सार्वभौमिक संस्था है, इसलिए उसमें एक रुपता दिखाई नहीं देती। अलग-अलग देशों की अलग परिस्थितियों और अलग जातियों के अन्याय धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक दृष्टिकोण के अनुसार परिवारों का वर्गीकरण किया जाता है। वह निम्नलिखित प्रकार से --

(अ) परिवार में कितने सभासद एकत्र रहते है इस पर परिवार के प्रमुख दो विभाग होते है ---

(१) केन्द्र परिवार या एकाकी परिवार

(२) संयुक्त परिवार।

(१) केन्द्र परिवार --

यह परिवार का सबसे छोटा रुप है। इस परिवार में माता-पिता और उनकी अविवाहित बच्चे आते है। इसे ही केन्द्र परिवार या एकाकी परिवार या विभक्त परिवार कहते है। आधुनिक युग में ऐसे

---

२७ मेहन्द्रकुमार जैन - हिन्दी उपन्यासों में चित्रित परिवार - जैन ब्रदर्स, नयी दिल्ली - ५, प्र.सं.१९७४, पृ.६।

परिवारों की संस्था सर्वाधिक है। भारत के आदीम, ग्रामीण और नागरी समाज में यह परिवार दिखाई देते हैं। संयुक्त परिवार के विघटन के फलस्वरुप एकाकी परिवारों की संख्या बढ रही है। और यही ही आधुनिक हिन्दी उपन्यासकारों का इस प्रकार के परिवार के प्रति अधिक झुकाव है।

(२) संयुक्त परिवार --

केन्द्र परिवार के एकदम विरुध्द यह संयुक्त परिवार होता है। इस परिवार में बहुत से सदस्य एक साथ रहते हैं। "परिभाषा मूल परिवार से अधिक पीढियों के सदस्य सम्मिलित हो तथा उनके सदस्य एक दूसरे से सम्पत्ति आय तथा पारस्पारिक अधिकारों एवं कर्तव्यों के द्वारा सम्बन्धित हो।"[२८] संयुक्त परिवार में पारिवारिक प्रथाएँ और अभिमान बहुत दृढ होते हैं। वहाँ प्रत्येक, एक बडे समूह द्वारा अनुशासित होता है। इसका संचालन परिवार का मुखिया करता है, जिसे परिवार का कर्ता कहा जाता है। वह पारिवारिक सदस्यों में स्नेह भाव बनाए रखता है, आर्थिक व्यवस्था करता है, एवं झगडों को निपटाता है, तथा परिवार के बाहर के कार्यों को भी देखता है। परिवार के मुखिया की पत्नी परिवार कीअन्य स्त्रियों में प्रमुख मानी जाती है, वह आन्तरिक कार्यों की देखभाल करती है। उनके ही आदेशों के या विचारों के अनुसार ही हर सदस्य को चलना पडता है यह संयुक्त परिवार ग्रामीण और आदीम समाज में दिखाई देता है।

(आ) परिवार में औपचारिक, सत्ता, वंशपरंपरा, मालमत्ता व सामाजिक पदों का उत्तराधिकार, निवासपध्दती इत्यादीओं पर विभाजन किया जाता है की इसके भी दो वर्ग होते हैं --

---

२८ मेहन्द्रकुमार जैन - हिन्दी उपन्यासों में पारिवारिक चित्रण - पृ.१८, जैन ब्रदर्स, नयी दिल्ली-५।

(१) पितृमूलक परिवार --

पितृमूलकपरिवार में पिता प्रधान होता है और वंश भी पिता के नाम पर ही चलता है। वह सम्पूर्ण परिवार का प्रबन्ध करता है और परिवार के सभी सदस्य पिता के प्रभुत्व को मानते हैं। स्त्री विवाहोपरान्त पति के घर चली जाती है मगर स्त्रियों की अपेक्षा इस प्रकार के परिवार में पुरुषों को अत्यधिक महत्व रहता है एवं उनके हाथों में ही सत्ता रहती है। आजकल पितृ प्रधान परिवार ही अधिक प्रचलित है। सभी देशों में इनकी प्रधानता है।

(२) मातृ-मूलक परिवार --

मातृमूलक परिवार आज की अपेक्षा प्राचीन काल में अधिक थे। परिवार में माता ही प्रधान होती है और वंश उसी के नाम से चलता था। शेष सभी सदस्य माता के शिरोधार्य का सौभाग्य अनुपम करते थे और पुरुष की अपेक्षा स्त्री को अत्यधिक महत्व रहता था। पति-पत्नी के घर रह सकता है या कभी कभी आ कर परिवार में पत्नी से मिल सकता था। इसमें बहन की सन्तान भाई की सम्पत्ति कीअधिकारिणी होती है। भारत में कमजगहों पर ही यह परिवार पाये जाते हैं जैसे मालबार और आसाम में खासी, गारो, दक्षिण भारत में प्रगत समाज में दिखाई देते है।"[२९]

(३) क -) एकपत्नी परिवार --

इसमें पति केवल एक पत्नी वरण का सकता है। दूसरी पत्नी प्रथम पत्नी की मृत्यू या सम्बन्ध विच्छेद करने पर ही आ सकती है। प्राय: सभी सभ्य समाजों में इसी प्रकार की पारिवारिक व्यवस्था की प्रधानता है और सामयिक परिस्थितियों के बदल जाने के कारण लगभग संपूर्ण संसार में इसी प्रकार के परिवार

---

२९ डॉ. विलास संगवे - समाजशास्त्र परिचय - पृ.१३९, प्रथम सं.१९७५, प्रकाशन- गो.म.राणे, प्रकाशन २०४०, सदाशिव पेठ, टिळक रस्ता, पुणे ४११ ०३०।

पाये जाते है। भारत में प्रगत और अप्रगत समाज में।

ख) बहुपत्नीत्व परिवार --

ऐसे परिवार में पुरुष एक से अधिक पत्नीयाँ रख रखता है। मध्यकाल में इस प्रकार के परिवार बहुत संस्था में हो गये थे। मगर आजकल कुछ जातियों में ही यह परिवार कानून सम्मत माने जाते है नहीं तो कानून की दृष्टि से आज एक से अधिक पत्नी करना गुनाह माना जाता है।

ग) बहुपतित्व परिवार --

इसमें एक पत्नी के कई पति हो सकते है। यह स्थिति मुख्यत: तब होती हैं, जब स्त्रियों की संख्या समाज मे कम हो या घोर विपन्नता की स्थिति हो। उदा. भारत में डोडा, लद्दाखी, खस, कोल्टा, तोडा जाति में पाये जाते है।

३) संगठन के आधार पर -- बर्गीस के अनुसार परिवार के दो प्रकार के है -- (१) सांस्थायिक और (२) साहचर्य परिवार [३०]

(१) सांस्थायिक परिवार --

इसमें कई पीढियों के परिवार एक साथ रहते है जिससे वयोवृध्द स्त्री अथवा पुरुष का प्रभुत्व रहता है। इसमें व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा परिवार की सामाजिक प्रतिष्ठा पर ही निर्भर रहती है। और सम्मिलित सम्पत्ति, आय, वासस्थान उत्पादन की भावना का प्राधान्य रहता है। जो आर्थिक पक्ष में उत्पाद उपभोग की एक सुगठीत इकाई होती है।

---

३० डॉ. आशा बागडी - प्रेमचन्द परवर्ती उपन्यास - साहित्य में पारिवारिक जीवन - प्रकाशक - शोध प्रबन्ध प्रकाशन, दिल्ली-७, विजयदशमी, १९७ पृ.८।

(२) साहचर्य परिवार --

परिवार के सम्बन्धी संगठन का व्यापक प्रभाव पति-पत्नी और उनकी सन्तान तक ही सीमित रहता है। इसमें सिर्फ आर्थिक पक्ष में ही केवल उपभोग की इकाई है।

सारांश रुप में हम यही कह सकते है कि परिवार मानव जाति की महत्वपूर्ण संस्था है,प्राचीन काल से ही यह संस्था किसी रुप में विद्यमान है। विभिन्न देश एवं प्रदेशों के अनुसार एवं समय के अनुकूल उसमें परिवर्तन होते आये है मगर फिर भी मनुष्य जाति के लिए वह आवश्यक है। परिवार सम्बन्धी हमने भारतीय एवं पाश्चात्य रुपों को देखा है मगर दोनों में भी परिवार का महत्व अपने-अपने स्थान पर कोई न कोई मूल्य रखता है।

परिवार का महत्व --

परिवार समाज को सर्वाधिक महत्वपूर्ण इकाई है। यह समाज की अनिवार्य संस्था है। मानव जीवन के प्रारंभ से परिवार उसके साथ है। परिवार के अभाव में समाज एवं राष्ट्र निर्जीव एवं निष्प्राण है। मनुष्य का जन्म और उसका विकास परिवार में ही होता है। परिवार के प्रसार से ही राष्ट्र-निर्माण होता है। समाजरुपी भवन की नींव में परिवार ठोस पत्थर की तरह लगा हुआ है। जब तक पत्थर लगा रहेगा भवन अपने दृढ रुप में खडा रहेगा, पत्थर को हटाते ही भवन धराशायी हो जाएगा। वस्तुत: परिवार ने ही मानव जीवन में सुख और शान्ति का संचार किया है। परिवार मानव जाति में आत्मसंरक्षण,वंशवर्धन और जातीय जीवन के सातत्य को बनाए रखने का प्रधान साधन है। मनुष्य मरण धर्मा है, किन्तु मानव जाति अमर है व्यक्ति उत्पन्न होते है,बचपन,यौवन और बुढापे की अवस्था भोगकर समाप्त हो जाते है, पर वंश परम्परा द्वारा उनका संतान-क्रम अविच्छिन्न रुप से चलता रहता है। मृत्यु और अमृतत्व दो विरोधी वस्तुएँ है,किन्तु परिवार इन दोनों का समन्वय करता है। व्यक्ति भले ही मर जाएँ,पर परिवार और विवाह

द्वारा मानव जाति अमर है। "[30] पुत्र के रुप में पिता का ही पुनर्जन्म होता है, क्योंकि पिता के अंग- अंग और हृदय से प्राप्त अंशो को लेकर ही पुत्र की उत्पत्ति होती है। "[३१]

बालक परिवार में ही सर्व प्रथम सामाजिक सद्गुणों अर्थात सहनशीलता, प्रेम ,त्याग,सहयोग,सहानुभूति,कर्तव्य आदि का पाठ सीखता है। परिवार से ही उसकी शिक्षा प्रारंभ होती है। परिवार वह उद्गम स्थान है,जिसमें भविष्य का जन्म होता है। वह ऐसा शिशुगृह है जिसमें नये प्रजातंत्र का निर्माण होता है। परिवार जीवन की प्राथमिक प्रयोगशाला है अथवा समाज का वह ऐसा कारखाना है, जहाँ आदर्श मनुष्य का निर्माण होता है। परिवार के अभाव में सामाजिक प्राणी की कल्पना तक नहीं की जा सकती,इसलिए सामाजिक संरचनामें परिवार सर्वोपरि है। अमृतलाल नागर जी के शब्दों में " कुटुंब व्यक्तिगत प्रेम से बडी वस्तु है विवाहित कुटुम्ब समाज को सुसंबध्द बनाये रखने के लिए एक शक्तिशाली परम्परा है,व्यक्तिगत प्रेम से समाज के बंधन ढीले पड जायेंगे , कुटुम्ब की भावना नष्ट हो जायेगी। "[३२]

परिवार व्यक्ति और समाज के बीच की कडी है। बिना परिवारों का समाज अथाह समुद्र की भाँति है। परिवार उस अथाह समूह (समुद्र) को बूँद-बूँद में विभाजित करता है। इससे सामाजिक व्यवस्था और विशेषतः पारिवारिक संस्था का महत्व प्रकट होता है।

---

३० हरिदत्त वेदालंकार - हिन्दू परिवार मीमांसा,सरस्वती,सदन,मसूरी, १९६३, पृ.१।

३१ निरुक्त,बोम्बे संस्कृत एवं प्राकृत सीरीज,बम्बई। निरुक्त ३।४ याज्ञ. १।५६ तत्रात्मा जायते स्वयम्।

३२ अमृतलाल नागर - बूँद और समुद्र " प्रथम संस्करण १९६६, पृ.५१८।

निष्कर्ष --

'संक्षेप में' परिवार का स्वरुप' शीर्षक के अन्तर्गत पहले परिवार के जन्म की कथा मालुम कर लेने के बाद परिवार के भेद बताये गये है। संयुक्त परिवारों का विघटन होने के कारण भी बताये गये हैं। संयुक्त परिवार की सफलता असफलता दिखायी है। प्रजातन्त्र के युग में संयुक्त परिवार शायद हीसफल हो सकते है। पारिवारिक सुख परिवार के सदस्यों के परस्पर स्नेहपूर्ण सम्बन्धो पर अवलम्बित रहता है, इसलिए पहले पति-पत्नी के स्नेहपूर्ण,भावना शून्य तथा स्वार्थी प्रेम पर प्रकाश डाला है। परिवार के अन्य व्यक्तियों में अपने पराये का भेदभाव संघर्ष को निर्माण करता है।

हमारे पारिवारिक जीवन पर पश्चिमी प्रभाव के फलस्वरुप घर,होटल का रुप धारण कर रहा है। फिर पत्नी के रहते पर-स्त्री के साथ नाचना अथवा पति के रहते पर पुरुष से प्रेम करने की बातें दिखाई देती है।

पारिवारिक जीवन के आर्थिक पहलू को ध्यान में रखकर परिवार-नियोजन की आवश्यकता प्रतिपादित की गई है और उसके उपाय भी बताये गये है।

'मनुष्य को प्रकृति ने एकाकी नही बनाया। वह स्वभाव से ही एक सामाजिक प्राणि है। अपने जन्म,पालन-पोषण,सुरक्षा,शिक्षा और अन्य सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे दूसरों को सहायता और सहयोग पर निर्भर रहना होता है। प्रारम्भ से ही छोटे-छोटे समूहों में रहना मनुष्य के लिए आवश्यक और लाभदायक प्रामाणिल हुआ और इसी प्रकार के जीवन से संगठित जीवन की स्थापना हुई। मनुष्य की कुछ आवश्यक शर्तें है,जिसे साँस लेना, खाना-पीना आदि जिनके कारण वह संसार में जीवित रहता है। इसके अतिरिक्त काम-भाव जैसी शर्त,जिसे मानव अकेली पूरी नहीं कर सकता, दूसरे की साहयता से ही पूरी हो सकती है। इस शर्त की पूर्ति के लिए पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष की जरुरत है। परन्तु काम-भाव का

परिणाम सन्तानोत्पत्ति हो जाता है। इस प्रकार काम-वासना की संतुष्टी तथा उत्पन्न होने वाली सन्तान के लिए स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के साथ मिलकर रहने लगे। इसलिए एक दूसरे और बच्चों के जीवन-धारण की चिन्ता से परिवार का जन्म हुआ।"[३३]

---

३३ डॉ. रांगेय राघव एवं गोविन्द शर्मा - संस्कृति और समाजशास्त्र राजपाल एण्ड सन्स प्रथम संस्करण १९६८, मा.र.पृ.२१-२२।